Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

दिल्ली सल्तनत के अधीन ललित कलाओं का विकास (13वीं-14वीं शताब्दी)

(अंकुर वर्मा)
शोध छात्र,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 102-108
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 12 Oct 2020
Published : 20 Oct 2020

सारांश – प्रमुख कलाओं के अलावा भी निश्चित रूप से अन्य ललित कलाओं का अस्तित्व भी अवश्य रहा होगा, किंतु दुर्भाग्यवश हमारे पास इस विषय से सम्बंधित प्रामाणिक साक्ष्यों की इस कालखंड में काफी कमी है। 13वीं–14वीं शताब्दी का समय व्यापार–वाणिज्य की दृष्टि से प्रगतिशील माना जाता है। प्रो.मोहम्मद हबीब इस काल को नगरीय क्रांति की अवधारणा से संबद्ध करते हैं। सामाजिक बंधनों और जड़ता में इस काल में निश्चित रूप से ढीलापन आया। जब भी समाज में रूढ़िवादिता और संकीर्णता के बंधन कमजोर पड़ते हैं तो कलाओं के विकास के बेहतर अवसर उत्पन्न होते हैं। व्यापार–वाणिज्य और आर्थिक प्रगति के चलते वैदेशिक संपर्कों की स्थापना भी हुई। ऐसे में बाहरी कलाओं और संस्कृतियों से भी संपर्क अवश्य स्थापित हुआ होगा, जिसका प्रभाव यहां के कलात्मक माहौल पर स्वाभाविक रूप से पड़ा होगा। साथ ही कृषि में अधिशेष के चलते शिल्प आदि के विकास के लिए भी परिस्थितियां बनी होंगी। साक्ष्यों के अभाव में यह मान लेना कि जिन सुल्तानों के समय स्थापत्य और संगीत और चित्रकला की प्रगति होती रही, उन्होंने अन्य कलाओं को प्रोत्साहन नहीं दिया होगा, तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। भारत में कुटीर व्यवसायों की परंपरा संपूर्ण मध्यकाल में रही है। इनमें से कई व्यवसाय शिल्प और कलाओं से संबंधित थे (जैसे–कपड़ों की रंगाई, कढ़ाई, खिलौना निर्माण,मूर्ति निर्माण इत्यादि)। इनका विकास स्वतंत्र रूप से स्थानीय स्तर पर होता रहा। साथ ही, प्रांतीय केंद्रों और हिंदू राजाओं के यहां भी कलाओं को आश्रय मिला। ऐसे में दिल्ली सल्तनत निश्चित रूप से इनसे अछूती नहीं रही होगी।

मुख्य शब्द – दिल्ली, सल्तनत, ललित, कला, व्यापार–वाणिज्य, सामाजिक, रूढ़िवादिता, संकीर्णता।

ललित कलाओं से तात्पर्य उन सभी विधाओं से है जो मनुष्य की भावनाओं को एक साकार रूप प्रदान करने की क्षमता रखती हैं। अपने व्यापक स्वरूप में यह किसी समाज की सांस्कृतिक मनोदशा की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

हैं। इनकी स्थिति का मूल्यांकन करके हम किसी देश काल की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और काफी हद तक राजनीतिक परिस्थितियों तथा शासक वर्ग के दृष्टिकोण का अनुमान लगा सकते हैं। ललित कलाओं के अंतर्गत स्थापत्य, चित्रकला, संगीत आदि मुख्य रूप से शामिल किए जाते हैं।

विविध संस्कृतियों वाला भारत प्राचीन काल से ही ललित कलाओं के संदर्भ में काफी उन्नत रहा है। पाषाण काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न प्रकार से इसका विकास निरंतर होता रहा। ऐसे में अगर हम अपने अध्ययन को एक ऐसी कालावधि पर केंद्रित करें, जिसमें धर्म की भूमिका काफी प्रमुख रही हो और यह धर्म भी ऐसा कि इसमें ललित कलाओं के विकास की गुंजाइश कम हो तो अध्ययन निश्चित रूप से अधिक रुचिकर होगा। उत्तर भारत में 13वीं–14वीं शताब्दी का समय एक ऐसा ही कालखंड था।

भारत में तुर्क सत्ता की स्थापना एक क्रांतिकारी परिघटना थी जिसने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन परिस्थितियों को प्रभावित किया और भावी समाज–संस्कृति के निर्माण को नई दिशा प्रदान की। नवस्थापित तुर्की शासक और शासित वर्ग के मध्य सबसे बड़ा अंतर संस्कृतियों का था। जहां एक और यहां की बहुसंख्यक आबादी गैर मुसलमान(हिन्दू) थी, तो वहीं दूसरी ओर एक कट्टर धार्मिक उलेमा वर्ग था जो कि इस नवस्थापित सत्ता को धार्मिक आधार पर वैधता प्रदान कर सकता था। किंतु यह धार्मिक वर्ग भारत में तलवार के बल पर इस्लाम कबूल करा कर अपनी संस्कृति को थोपने का दबाव शासक वर्ग पर डाल रहा था[1]जो कि व्यवहारिक रूप से अतार्किक और असंभव था, क्योंकि बिना हिंदुओं के सहयोग के शासन को सुदृढ़ करना संभव नहीं था। स्थानीय स्तर के अधिकांश अधिकारी हिंदू थे तथा इनकी जनता पर पकड़ भी बेहतर थी। ऐसे में शासक वर्ग के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि धार्मिक वर्ग को रुष्ट किए बिना जनता का समर्थन कैसे प्राप्त किया जाए। अत: परिस्थिति वश ही किंतु मुस्लिम सत्ताधारी वर्ग को हिंदुओं से सहयोग लेना पड़ा। इस प्रक्रिया में दोनों वर्ग एक–दूसरे के समीप आए और शनै:–शनै: दो ऐसी संस्कृति और सभ्यताओं, जो कि मान्यताओं रिवाजों से लेकर लगभग हर बात में भिन्न थीं, के सम्मिश्रण की एक अभूतपूर्व प्रक्रिया प्रारंभ हुई। फलस्वरूप एक नवीन संस्कृति ने जन्म लिया, जिसे हम हिंद इस्लामी संस्कृति के नाम से जानते हैं। इसमें दोनों ही सभ्यताओं की अच्छी बातें मौजूद थी। वह हिंद इस्लामी संस्कृति जो अकबर के समय अपने चरम पर जा पहुंची, वस्तुत: उसकी नींव इसी काल में रखी गई थी। 13वीं 14वीं शताब्दी इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। इस दौरान यह मिली–जुली संस्कृति अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में ललित कलाओं के माध्यम से व्यक्त हुई।

सबसे पहले स्थापत्य कला की चर्चा करना उचित होगा जो कि इस काल में सर्वाधिक विकसित अवस्था में रही। भारत में स्थापत्य समृद्ध परंपरा रही है। स्तूपों, चैत्यों, महलों के अवशेषों आदि के माध्यम से इसे रेखांकित किया भी जा सकता है। सल्तनत काल में भारतीय स्थापत्य को एक नई दिशा प्राप्त हुई। इसमें विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक,धार्मिक व लोककल्याण संबंधी कारकों ने भी भूमिका निभायी। इस दौरान इमारत निर्माण शैली में अनेक नवीन तत्वों ने जन्म लिया जो कि भारतीय–इस्लामी शैली के सुंदर मिश्रण के प्रतीक थे। सल्तनत की शुरुआत कुतुबुद्दीन ऐबक से मानी जाती है। उसी ने सल्तनत कालीन स्थापत्य की नींव भी रखी। रायपिथौरा में उसने सर्वप्रथम एक मस्जिद "कुवत उल इस्लाम" का निर्माण कराया जो कि मंदिर के अवशेषों पर निर्मित की गई थी।[2] निर्माण का लक्ष्य था कि इबादत के स्थान होने के साथ–साथ या मुस्लिम समुदाय के लिए एक प्रार्थना स्थल का भी कार्य कर सके। इसमें ही सबसे पहले हिंद इस्लामी संस्कृति की झलक दिखती है। यहां मेहराबें उत्कृष्ट और सही अनुपात में दिखती हैं, हालांकि तकनीकी रूप से ये

1. मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, प्रो.राधेश्याम, पृ.176 ।

2. आर्किटेक्चर इन मेडिवल इंडिया, मोनिका जुनेजा, पृ.143 ।

कमतर थीं। इसी कारण सल्तनत काल की प्रारंभ की इमारतें शीघ्र ही ध्वस्त हो गई। ऐबक द्वारा निर्मित सर्वश्रेष्ठ इमारत कुतुबमीनार थी, जिसे इल्तुतमिश ने पूरा करवाया। संभवत: यह मीनार तुर्कों की भारत विजय के प्रतीक स्वरूप बनवाई गई थी। यह मीनार सुंदरता और मजबूती का श्रेष्ठ उदाहरण है। आधार पर 15 मीटर चौड़ाई शीर्ष पर घटते-घटते मात्र 3 मीटर रह जाती है जो कि तकनीकी श्रेष्ठता का द्योतक है। छज्जों में प्रयुक्त अवरोही टोडा तकनीक दर्शनीय है। ऐबक ने एक अन्य इमारत अड़ाई दिन का झोपड़ा भी बनवाई जो कि अजमेर में स्थित है। ऐबक के बाद इल्तुतमिश ने भी निर्माण कार्य कराए। भारत में मकबरा शैली का जनक उसे ही माना जाता है। महरौली क्षेत्र में उसने खुद का एक सुंदर मकबरा बनवाया। तीन ओर से मेहराबयुक्त द्वारों वाली एक वर्गाकार इमारत है जो कि लाल पत्थरों से निर्मित है तथा केंद्र में संगमरमर की कब्र है। दीवारों पर फूल पत्तियों, ज्यामितीय आकृतियों, बेलबूटों, कुरान की आयतों आदि से सजावट की गई है। हालांकि बाद में इस मक़बरे में नासिरुद्दीन महमूद को दफनाया गया। इल्तुतमिश ने कुव्वत उल इस्लाम मस्जिद में सुधार कराने के साथ ही बदायूं में इससे भी बड़ी एक जामा मस्जिद का निर्माण करवाया। उसने दिल्ली में जलापूर्ति के लिए एक विशाल तालाब "हौज-ए-शम्सी" भी बनवाया जो कि लोककल्याण की ओर संकेत करता है। सल्तनत काल की अन्य प्रमुख इमारत थी 'बलबन का मकबरा' । सबसे पहले इसी में सच्ची मेहराब का प्रयोग हुआ है। यह महरौली क्षेत्र में स्थित है तथा वर्तमान में जर्जर अवस्था में है।

सल्तनतकालीन स्थापत्य का सबसे शानदार युग खिलजी काल को माना जाता है। अलाउद्दीन ने भव्य इमारतें बनवाई। उसने कुव्वत उल इस्लाम मस्जिद का क्षेत्र बढ़वाने के साथ ही महरौली में इमारतों की एक श्रृंखला बनवाने की योजना बनवाई जो कि उसकी मृत्यु के चलते अधूरी रह गई। इसी के तहत उसने महरौली के प्रवेश द्वार के रूप में 'अलाई दरवाजा' निर्मित करवाया जो कि पूरे सल्तनतकाल की सर्वश्रेष्ठ इमारत मानी जाती है।[3] लाल पत्थरों से निर्मित यह इमारत इंडो इस्लामिक शैली की प्रथम स्पष्ट कृति मानी जा सकती है। इसमें पत्थर को काटकर घनी नक्काशी की गई है। इस्लामी(ईरानी) तत्वों में अरबी अभिलेख, कंगूरों पर नक्काशी, ज्यामितीय आकृतियों का अंकन प्रमुख है, जबकि भारतीय तत्वों के रूप में कमल और कलियों व लताओं का अंकन प्रमुख रूप से किया गया है। इसकी बारीक कारीगरी और जालियां दर्शनीय हैं। सर्वप्रथम घोड़े की नाल वाली आकृति की मेहराबों का उपयोग इसी में किया गया।[4] अलाउद्दीन ने एक मीनार अलाई मीनार का निर्माण भी आरंभ करवाया, किंतु यह पूरी न हो सकी। उसने दिल्ली का दूसरा नगर सीरी स्थापित किया तथा इसमें अनेक इमारतों का निर्माण करवाया, जिसमें हजार सूतून महल सर्वप्रमुख था। इल्तुतमिश की भांति ही अलाउद्दीन ने भी एक तालाब सीरी में जलापूर्ति के लिए बनवाया, जिसे हौज-ए- खास अथवा हौज-ए-अलाई कहा जाता है। 16वीं शताब्दी के साहित्य में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है।

खिलजी काल के विपरीत तुगलकों के स्थापत्य में सादगी थी। इसके पीछे विद्वानों ने अलग-अलग मत दिए हैं। कुछ लोग गयासुद्दीन का सादगीपूर्ण व्यक्तित्व तो कुछ लोग तुगलकों के पास धन के अभाव को इसका प्रमुख कारण मानते हैं (जबकि अलाउद्दीन के पास दक्षिण से प्राप्त की गई अकूत संपत्ति थी)। कुछ समकालीन स्रोतों में यह मत भी है कि मोहम्मद तुगलक जब राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद ले गया तो दिल्ली में कुशल कारीगरों का अभाव हो गया, जिसके चलते यहां की इमारतें सादी हो गयीं। हालांकि यह मत अधिक विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। इस काल की स्थापत्य कला के प्रमुख लक्षण रंगीन पत्थरों की जगह रंगों का प्रयोग, अभिलेखों का अभाव, निर्माण में ईटों और मलबे

3. आर्किटेक्चर इन मेडिवल इंडिया, मोनिका जुनेजा, पृ.15 ।

4. मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विकास, डॉ. रामनाथ, पृ.38 ।

का प्रयोग, भद्दी मोटी कमजोर दीवारें, अंदर की ओर झुकी मस्जिदों, इमारतों, दुर्गों की दीवारें और बुर्ज तथा उभरी गर्दन वाले नुकीले गुंबदों का प्रयोग इत्यादि थे। गयासुद्दीन ने दिल्ली का तीसरा नगर तुगलकाबाद भी बताया और इसमें कई इमारतें बनवाई। उसके महल का उल्लेख इब्नबतूता करता है जिसे वह अत्यंत सुंदर और भव्य बताता है। गयासुद्दीन ने खुद का मकबरा भी बनवाया जो एक कृतिम झील के बीचोंबीच स्थित है।[5]इसमें हिंदू तत्वों कलश और आमलक का प्रयोग किया गया है। यह एक पंचमुखी इमारत है। मोहम्मद तुगलक ने भी निर्माण कार्य करवाए। उसने चौथी दिल्ली या 'जहांपनाह' नगर को बसाया। इसमें बनी कई इमारतों में से वर्तमान में विजय मंडल और सतपुला बंधके अवशेष प्राप्त होते हैं। उसने तुगलकाबाद के समीप आदिलाबाद किला का निर्माण भी करवाया। तुगलक सुल्तानों में स्थापत्य का सबसे शौकीन फिरोज था। हालांकि उसने संख्या पर अधिक ध्यान दिया,गुणवत्ता पर नहीं।[6] सजावट का कार्य मुख्यत: मेहराबों पर बने पलस्तर किए चित्रफ़लकों में दिखता है। उसने मस्जिद के डिजाइन में नई शैली लाने का सुंदर प्रयास किया, जिसका आधार पारंपरिक सहन होने की बजाय क्रॉस का आकार था।[7] यह शैली उसकी समस्त इमारतों में झलकती है। उसने दिल्ली का पांचवा नगर 'फिरोजाबाद' बसाया जहां 'कुश्क़-ए-सफेद' महल बनवाया जो उसके स्वयं के रहने के लिए था। इसे ही बाद में फिरोजशाह कोटला के नाम से जाना गया। नगर में उसने कई मस्जिदे बनवाई जिसमें सर्वप्रमुख थी जामा मस्जिद, जिसके खंभों पर उसने अपने शासन की उपलब्धियां अंकित कराई तथा इनका संकलन भी फुतुहात ए फिरोजशाही के नाम से करवाया। फिरोज ने पुरानी इमारतों की मरम्मत के साथ-साथ तमाम नए नगर, उद्यान और औषधालयों, मदरसों आदि की स्थापना भी करवायी। उसके समय की एक अति महत्वपूर्ण इमारत खानेजहां तेलंगानी का मकबरा है।[8] प्रथम मकबरा है, जो कि अष्टभुजाकार था। इस पर एक विशाल गुंबद का निर्माण किया गया तथा इसके चारों ओर स्तंभों वाला एक बरामदा बनाया गया। आगे चलकर मकबरा निर्माण के क्षेत्र में यह मानक की भांति साबित हुआ।

स्थापत्य के उपरांत **संगीत** की चर्चा करना उचित होगा। इस ललित कला के दृष्टिकोण से भी यह एक उन्नत काल था। वस्तुत: भारत में संगीत की परंपरा विश्व की प्राचीनतम परंपराओं में से एक है। माना जाता है कि यह कला शिव से ब्रह्म तथा ब्रह्म से सरस्वती जी को प्राप्त हुई। ऋग्वेद में वीणा,मृदंग,बांसुरी आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। सामवेद संगीत से ही संबंधित है। इसमें सात स्वरों का उल्लेख है। नाट्यशास्त्र, श्रृंगारप्रकाश, संगीत रत्नाकर जैसे अनेक ग्रंथ भारत में ही लिखे गए। मोहम्मद कासिम की सिंध विजय के समय भी वहां पर भारतीय संगीत पद्धति काफी प्रचलित थी।[9] कुछ अवरोधों और परिवर्तनों के बावजूद 13वीं-14वीं शताब्दी में संगीत का विकास निरंतर होता रहा। यद्यपि संगीत को स्थापत्य की भांति व्यापक स्तर पर उतना संरक्षण नहीं मिला, तथापि इसका अस्तित्व निरंतर बना रहा और प्रगति होती रही। वस्तुत: तुर्क अपने साथ अरबों की समृद्ध परंपरा तथा रबाब व सारंगी जैसे वाद्य भी लाए थे। सुल्तानों और अमीरों ने भी इस कला को सहारा दिया और कई नए तत्वों ने भारतीय संगीत में प्रवेश किया। स्थानीय केंद्रों और हिंदू शासकों के यहां भी संगीत को प्रश्रय मिला। राजपूतों के रनिवासों में संगीतमय माहौल हुआ करता था और उनकी स्त्रियां भी गाने बजाने में निपुण हुआ करती थी। मोटे तौर पर कहा जाए तो तुर्की आक्रमणों से भारतीय संगीत कला पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। 12 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कवि लोचन ने रागतरंगिणी की रचना

[5]. मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विकास, डॉ. रामनाथ, पृ.38 ।

[6]. मध्यकालीन भारत(750-1540ई.), हरिश्चंद्र वर्मा, भाग-I, पृ.519 ।

[7]. मध्यकालीन भारत(750-1540ई.), हरिश्चंद्र वर्मा, भाग-I, पृ.519 ।

[8]. मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विकास, डॉ. रामनाथ, पृ.39 ।

[9]. द हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस: द मोहम्मडन पीरियड, इलियट&डाउसन, भाग-I, पृ.19 ।

की जिसमें हिंदू संगीत पद्धति में गीत संगीत रचना के सिद्धांतों का वर्णन किया गया था।[10] महमूद गजनवी योद्धा होने के बावजूद एक संगीत प्रेमी था। सल्तनत काल भारतीय संगीत के क्षेत्र में अभिनव प्रयोगों का काल रहा है। मध्यकालीन संगीत परंपरा के सर्वप्रमुख प्रणेता अमीर खुसरो थे जो कि एक कवि और दार्शनिक भी थे। उन्हें 'तूती ए हिंद' भी कहा जाता है। भारतीय संगीत को इन्होंने अरब के संगीत से श्रेष्ठ बताया। उनका कहना था कि "यहां का संगीत मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं को प्रभावित कर देता है तथा इस संगीत से हरिण कृत्रिम निद्रा में निमग्न होकर शिकारी का शिकार बन जाते हैं।"[11] अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत में कई तालों और रागों की वृद्धि की, जैसे राग गोरा, तिलक, सनम, सरपादा इत्यादि।[12]उन्होंने संगीत में प्रयुक्त होने वाले बारह स्वरों के ईरानी नामों के आधार पर भारतीय रागों का वर्गीकरण किया। खुसरो को ही कव्वाली गायन का भी प्रणेता माना जाता है। यद्यपि इस पर विवाद है तथापि अनेक विद्वान तबले और सितार के आविष्कार का श्रेय भी इन्हें ही देते हैं।[13] अमीर खुसरो ने दक्षिण के संगीतकारों से भी संपर्क स्थापित किया। गोपाल नायक एक प्रमुख संगीतकार थे जो अलाउद्दीन की दक्षिण विजय के उपरांत उपहारस्वरूप दिल्ली लाए गए थे। इनके साथ अमीर खुसरो की संगीत प्रतियोगिता के आयोजन के उल्लेख मिलते हैं।[14] तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संगीत पर एक ग्रंथ संगीत रत्नाकर लिखा गया जिसके रचयिता सारंगदेव थे। इसी प्रकार अलाउद्दीन की गुजरात विजय के उपरांत परवार नामक जाति के लोगों को बंदी बनाकर दिल्ली लाए जाने का उल्लेख मिलता है जो कि गा–बजा कर अपनी जीविका चलाते थे।

संगीत के विकास में 'सूफियों' का अद्वितीय योगदान रहा है। वैसे तो इस्लाम में संगीत को लेकर स्पष्ट अनुमति या प्रतिबंध नहीं है, किंतु सूफियों में अधिकांश संप्रदायों में इसकी अनुमति थी। ये लोग संगीत को ईश्वर की इबादत का एक जरिया मानते थे। सूफी संगीत सभाओं को 'समा' कहा जाता था। सुल्तानों की ओर से भी सूफियों को अधिकांशत: समर्थन मिलता रहा तथा कई सुल्तान तो स्वयं इन सूफियों के अनुयायी भी थे। इल्तुतमिश के बारे में कहा जाता है कि वह सुल्तान बनने से पहले सूफियों के उपदेश और संगीत लीन होकर सुना करता था। बलबन अत्यंत सुरीले अंदाज में स्वयं कुरान का उच्चारण करता था, इसीलिए उसे कुरानख्वां कहा जाता था। सूफियों ने आम जनता से संपर्क स्थापित किए। इनकी खानकाहों में बिना धर्म–जाति–वर्ग के भेद के सभी को शरण मिलती थी। सूफियों में भी चिश्ती सिलसिले ने संगीत के विकास में विशेष योगदान दिया। कहा जाता है कि शेख मोइनुद्दीन चिश्ती की खानकाह पर संगीत सुनने के लिए भारी भीड़ एकत्र होती थी। सूफी लोग गजलों के माध्यम से खुदा की इबादत करते थे। गजलों का स्वरूप भौतिक रूप से देखने में तो वासनामय लगता था, लेकिन जब इनका गायन खानकाहों में किया जाता था तो यह भक्तिमय प्रतीत होती थी। 13वीं–14वीं शताब्दी में गजल की प्रसिद्धि सभी सुल्तानों के दरबार में रही। इल्तुतमिश, शाहजादा, मोहम्मद, अलाउद्दीन खिलजी, मुबारक खिलजी, मोहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक आदि सभी गजल के शौकीन थे। गजल से ही मिलती–जुलती विधा कव्वाली[15] भी सूफ़ियों में काफी प्रचलित थी। गजल और कव्वाली आज भी अत्यंत लोकप्रिय संगीत विधाएं है। बलबन का पुत्र कैकुवाद बड़ा संगीत प्रेमी था।[16] सुल्तान मोहम्मद तुगलक के बारे में कहा जाता है कि उस के दरबार में लगभग 12 सौ संगीतज्ञ थे जो गायन के साथ–साथ संगीत की शिक्षा भी देते थे। फिरोज़ शाह

[10]. ए शॉर्ट हिस्टॉरिकल सर्वे ऑफ म्यूजिक ऑफ अपर इंडिया, वी.एन. भातखण्डे, पृ.5-9 ।

[11]. द गजेटियर ऑफ इंडियन यूनियन, भाग-II, हिस्ट्री एंड कल्चर, संपा.-पी.एन. चोपड़ा, पृ.494 ।

[12]. ए सोशल,कल्चरल एंड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग-II, पृ.236 ।

[13]. इस्लामिक कल्चर-प्रमोशन ऑफ म्यूजिक बाय टर्को अफगान रूलर्स ऑफ इंडिया, भाग-XXIV, पृ.494।

[14]. द हिस्ट्री ऑफ खल्जीज, के.एस. लाल, पृ.336 ।

[15]. लीव्ज फ्रॉम इंडियन कल्चर, सर अब्दुल क़ादिर, पृ.280 ।

[16]. मुंतख़ब उत तवारीख, अब्दुल कादिर बदायूँनी, भाग-I, पृ.158-161 ।

तुगलक के समय संगीत एकीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। इसी के समय संगीत के ग्रंथ रागदर्पण का फारसी में अनुवाद किया गया।[17] इस प्रकार स्पष्ट है कि सल्तनत काल की पहली दो शताब्दियों में संगीत का पर्याप्त विकास हुआ।

चित्रकला का अस्तित्व भारत में आदिकाल से ही रहा है और इसकी एक उन्नत परंपरा हमेशा यहाँ विद्यमान रही है। भीमबेटका, अजंता, एलोरा आदि के चित्रों में इसे स्पष्टत: देखा जा सकता है। भारतीय चित्रकला के प्रमुख रूप भित्तिचित्र, चित्रपट, चित्रफलक एवं लघु चित्रांकन आदि हैं। तुर्की शासन की स्थापना राजनीति के साथ-साथ समाज और संस्कृति के क्षेत्र में भी क्रांति थी। इस्लाम में जीव प्रतिरूपण निश्चित होने के कारण इस काल में चित्रकला अलग रूप में सामने आई सजावट के लिए ज्यामित्तीय आकारों, बेलबूटों, फूल, पत्तियों आदि का चित्रांकन किया गया। पहले ऐसा माना जाता था कि सल्तनत काल में धार्मिक बंदिशों के चलते चित्रकला अस्तित्व में नहीं रही, किंतु पुनर्मूल्यांकन के आधार पर निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि इस समय चित्रकला को भी छोटे स्तर पर ही सही, किंतु प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रोत्साहन मिलता रहा। साथ ही तमाम क्षेत्रीय शासकों द्वारा भी चित्रकला को बढ़ावा दिया जा रहा था। समूचे मध्यकाल में इस्लामी जगत में राजकीय कक्षों और भवनों को भित्तिचित्रों से सजाने का चलन था।[18] दिल्ली सल्तनत भी इससे अछूती नहीं रही। अमीरों और कुलीन वर्ग द्वारा बाहर से आयात की जाने वाली चित्रित पांडुलिपियों से भी सुल्तानों का संपर्क अवश्य रहा होगा। 13वीं-14वीं शताब्दी में चित्रकला के कुछ उदाहरणों की चर्चा भी की जा सकती है, जैसे- समकालीन लेखक ताजुद्दीन रजा सुल्तान इल्तुतमिश के समय चित्रकला से सजावट के प्रचलन का एक उल्लेख करता है।[19] साथ ही वह 1229 ईसवी में बगदाद के खलीफा के दूत के आगमन के समय तख्तमहल की मेहराब पर मानव और पशु आकृतियों के अंकन की भी सूचना देता है, जिसकी पुष्टि बाद में ईसामी के ग्रंथ फुतुह उस सलातीन से होती है। मिनहाज सिराज भी बताता है कि इसी समय सुल्तान इल्तुतमिश की एक विशाल तस्वीर समारोह के दौरान मुख्य बाजार में लगाई गई। इसामी इल्तुतमिश के समय चीनी चित्रकारों के दिल्ली लाए जाने का उल्लेख करता है। इससे सुल्तान इल्तुतमिश के समय चित्रकला की परंपरा मौजूद होने का अनुमान मिलता है। समकालीन ग्रंथों में भी चित्रकला के साक्ष्य मिलते हैं। ये ग्रंथ भित्ति चित्रों, पांडुलिपियों, कपड़े पर बने चित्रों आदि के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। 'देवलरानी खिज्र खां' में डिजाइन के लिए चकरबों के प्रयोग का उल्लेख किया गया है। 'नूहसिपिहर' में अमीर खुसरो ने सुंदर चित्रित वस्त्रों का विवरण दिया है।[20] साथ ही उनके अन्य ग्रंथों में भी बहुत से स्थानों पर आकृतिमूलक रेखांकनों व आकृतियों में अंकित पदों का उल्लेख मिलता है। 'छिताई वार्ता' नामक एक ग्रंथ में चित्रकार और उसकी रचनाओं का उल्लेख है। इस प्रकार, चित्रकला से संबंधित कई साक्ष्य साहित्य में देखे जा सकते हैं। अफीफ़ की 'तारीख ए फिरोजशाही' में चित्रकला से संबंधित एक महत्वपूर्ण विवरण मिलता है। वह इसमें सुल्तान फिरोज शाह द्वारा महल की दीवार की सजावट के संदर्भ में दिए गए आदेश की चर्चा करता है और बताता है कि सुल्तानों में आरामगृहों को आकृतिमूलक चित्रों से सजाने की परंपरा थी। यह परंपरा मध्य एशिया और ईरान से ली गई थी। बरनी भी अपनी पुस्तक 'तारीख ए फिरोजशाही' में कैकुवाद द्वारा प्रारंभ करवाये गए महल की चर्चा करता है जिसे जलालुद्दीन खिलजी ने पूरा करवाया और उसकी सजावट चित्रों के माध्यम से करवायी। मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' में भी चित्रांकित महल की अटारी की चर्चा होती है। साथ ही, जैन सौदागरों से संबंधित सचित्र पांडुलिपियाँ भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई हैं। इस

[17]. इस्लामिक कल्चर-प्रमोशन ऑफ म्यूजिक बाय टर्को अफगान रूलर्स ऑफ इंडिया, भाग-XXIV, पृ.19 ।

[18].मध्यकालीन भारत(750-1540ई.), हरिश्चंद्र वर्मा, भाग-I, पृ.526 ।

[19] वही, पृ.525 ।

[20]. वही, पृ.525 ।

प्रकार, निश्चित रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि सल्तनत काल में चित्रकला सामान्य चलन में थी तथा इस पूरे कालखण्ड में निरन्तरता बनाये हुए आगे बढ़ती रही।

उपरोक्त वर्णित प्रमुख कलाओं के अलावा भी निश्चित रूप से अन्य ललित कलाओं का अस्तित्व भी अवश्य रहा होगा, किंतु दुर्भाग्यवश हमारे पास इस विषय से सम्बंधित प्रामाणिक साक्ष्यों की इस कालखंड में काफी कमी है। 13वीं-14वीं शताब्दी का समय व्यापार-वाणिज्य की दृष्टि से प्रगतिशील माना जाता है। प्रो.मोहम्मद हबीब इस काल को नगरीय क्रांति की अवधारणा से संबद्ध करते हैं। सामाजिक बंधनों और जड़ता में इस काल में निश्चित रूप से ढीलापन आया। जब भी समाज में रूढ़िवादिता और संकीर्णता के बंधन कमजोर पड़ते हैं तो कलाओं के विकास के बेहतर अवसर उत्पन्न होते हैं। व्यापार-वाणिज्य और आर्थिक प्रगति के चलते वैदेशिक संपर्कों की स्थापना भी हुई। ऐसे में बाहरी कलाओं और संस्कृतियों से भी संपर्क अवश्य स्थापित हुआ होगा, जिसका प्रभाव यहां के कलात्मक माहौल पर स्वाभाविक रूप से पड़ा होगा। साथ ही कृषि में अधिशेष के चलते शिल्प आदि के विकास के लिए भी परिस्थितियां बनी होंगी। साक्ष्यों के अभाव में यह मान लेना कि जिन सुल्तानों के समय स्थापत्य और संगीत और चित्रकला की प्रगति होती रही, उन्होंने अन्य कलाओं को प्रोत्साहन नहीं दिया होगा, तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। भारत में कुटीर व्यवसायों की परंपरा संपूर्ण मध्यकाल में रही है। इनमें से कई व्यवसाय शिल्प और कलाओं से संबंधित थे (जैसे-कपड़ों की रंगाई, कढ़ाई, खिलौना निर्माण,मूर्ति निर्माण इत्यादि)। इनका विकास स्वतंत्र रूप से स्थानीय स्तर पर होता रहा। साथ ही, प्रांतीय केंद्रों और हिंदू राजाओं के यहां भी कलाओं को आश्रय मिला। ऐसे में दिल्ली सल्तनत निश्चित रूप से इनसे अछूती नहीं रही होगी।

सन्दर्भ सूची :

1. मध्यकालीन प्रशासन, समाज एवं संस्कृति, प्रो.राधेश्याम
2. आर्किटेक्चर इन मेडिवल इंडिया, मोनिका जुनेजा
3. मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विकास, डॉ. रामनाथ
4. मध्यकालीन भारत(750-1540ई.), हरिश्चंद्र वर्मा, भाग-I
5. द हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस: द मोहम्मडन पीरियड, इलियट&डाउसन, भाग-I
6. ए शॉर्ट हिस्टॉरिकल सर्वे ऑफ म्यूजिक ऑफ अपर इंडिया, वी.एन. भातखण्डे
7. द गजेटियर ऑफ इंडियन यूनियन, भाग-II, हिस्ट्री एंड कल्चर, संपा.-पी.एन. चोपड़ा
8. ए सोशल,कल्चरल एंड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग-II
9. इस्लामिक कल्चर-प्रमोशन ऑफ म्यूजिक बाय टर्को अफगान रूलर्स ऑफ इंडिया, भाग-XXIV
10. द हिस्ट्री ऑफ खल्जीज, के.एस. लाल
11. लीव्ज फ्रॉम इंडियन कल्चर, सर अब्दुल क़ादिर
12. मुंतख़ब उत तवारीख, अब्दुल कादिर बदायूँनी, भाग-I